विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष ११ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२५ • आश्विन पूर्णिमा [शक] • दि. १२-१०-१९८१ • अंक ४

तृष्णा की गुलामी और मुक्ति

तृष्णा एक जहर है। हमारे जीवन-पात्र में भरा हुआ मीठा-मादक जहर। मीठा है इसलिए स्वाद के मारे हम इसे निरंतर पीते रहते हैं। मादक है इसलिए इसे पीकर हम मदहोश हुए रहते हैं और यह भी नहीं समझ पाते कि हम जहर पी रहे हैं। जहर है इसलिए इसे पीकर हम प्रतिक्षण मृत्यु के चंगुल में ही उलझे रहते हैं। नए नए जन्म लेते हैं, परन्तु हर जन्म मृत्यु के पोषण के लिए ही होता है। हर जीवन की दौड़ मृत्यु के लिए ही होती है। हर जन्म की चरम परिणति मृत्यु में ही होती है।

तृष्णा हमारे जीवन-नासूर की पीप है जो सतत् प्रवाहमान है। प्रतिक्षण इस फोड़े में से गन्दे स्राव की तरह रिस रिस कर बहती ही रहती है। इस आस्रव के कारण जीवन-व्रण सदा हरा रहता है। कभी सूखने नहीं पाता। हम इसकी पीड़ा से मुक्त होने नहीं पाते।

तृष्णा हमारे जीवन-कोढ़ की खाज है। इसे खुजला खुजलाकर हम इस कोढ़ को बढ़ाते रहते हैं। खुजलाने का मजा कोढ़ के कष्ट पर हावी हुआ रहता है।

तृष्णा जीवन का कफन है। मृत्यु की चादर है। इसे हम सुन्दर दुशाले की तरह ओढ़े हुए इसके सौन्दर्य पर मुग्ध रहते हैं।

तृष्णा एक प्यास है जो कभी तृप्त नहीं हो सकती। सारे विश्व का ऐंद्रिय-रस भी इस तृषा को बुझा नहीं सकता।

तृष्णा एक भूख है जो कभी मिटती नहीं। दुनियाभर का वैभव-भोग भी इस भूख को शांत नहीं कर सकता।

तृष्णा क्षितिज पकड़ने की ऐसी दौड़ है, जो कभी पूरी हो नहीं सकती।

तृष्णा एक ऐसा मृग-जाल है, जिसे भलीभांति न समझने के कारण इसमें से निकलने का प्रयत्न हमें अधिक उलझाता ही रहता है।

तृष्णा रबड़ की गेंद है। इसे जितने जोर से नीचे की ओर फेंकते हैं, यह उतनी ही तेजी से ऊपर की ओर उछल कर आती है। इसका जितना दमन करते हैं, यह उतनी ही विस्फोटक बनती जाती है।

•••••

धम्म वाणी

छन्दजं अघं, छन्दजं दुक्खं।
छन्द विनय अघ विनयो, अघ विनया दुक्ख विनयो॥

संयुक्तनिकाय-१/१/३४,

छन्दसे याने तृष्णासे पाप उत्पन्न होता है, तृष्णा से ही दुःख उत्पन्न होता है। तृष्णा नष्ट कर दी जाय तो पाप नष्ट हो जाता है। पाप नष्ट कर दिया जाय तो दुःख नष्ट हो जाता है।

तृष्णा को समझो! तृष्णा की गुलामी को समझो! यह जीवन की नैसर्गिक भूख से अलग है। दोनों का भेद जान लेना कल्याणकारी है।

भूख लगे तो शरीर पोषण के लिए आवश्यक आहार ग्रहण करना नैसर्गिक है। परन्तु पेट भरा हो तो भी जीभ के स्वाद के लिए खट्टे, मीठे, तीखे, चरपरे, रसभरे व्यंजन खाते रहना तृष्णा की गुलामी है। हिंसक पशु अपनी भूख मिटाने के लिए शिकार करता है परन्तु पेट भर जाने पर किसी जीव को मारने की बात सोचता भी नहीं, भरे पेट कुछ और खाने की बात सोचता भी नहीं। यह नैसर्गिक है, प्राकृतिक है। परन्तु कामना का गुलाम मनुष्य पेट भरा हो तो भी जीभ के स्वाद के लिए नए नए व्यंजन खाते रहने से नहीं अघाता। बिना भूख के भी समय-असमय कुछ न कुछ चरते रहना तृष्णा की गुलामी है।

प्यास लगे तो स्वच्छ, शीतल जल ग्रहण करना नैसर्गिक है। परन्तु स्वाद के मारे बिना प्यास के ही भिन्न भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पेय पीते रहना तृष्णा की गुलामी है।

सर्दी-गर्मी और वर्षा से, कीट-पतंगों और मक्खी-मच्छरों से शरीर को बचाने के लिए यथा आवश्यक वस्त्र धारण करना स्वाभाविक है। परन्तु स्पर्धा के वशीभूत होकर मात्र अहं-पोषण के लिए, अपने कबाट को नित्य नए फैशन वाले चमकीले-भड़कीले वस्त्राभूषणों से भरे रखना और ऐश्वर्य-प्रदर्शन की होड़ में उनका इस्तेमाल करना तृष्णा की गुलामी है।

धूप तथा कंकड़-काँटों से बचने के लिए पांव में जूते पहनना स्वाभाविक आवश्यकता है। परन्तु एक जोड़ी जूते होते हुए भी विभिन्न

डिजाइनों के जूतों, चप्पलों का ढेर जमा रखना और महज वैभव-प्रदर्शन के लिए उन्हें पहनना, तृष्णा की गुलामी है।

जनसेवा में लगना नैसर्गिक गुण है। परन्तु जनसेवा के नाम पर किसी सभा-सोसाइटी या सत्ता के पद पर आसीन होने के लिए व्याकुल रहना और पद प्राप्त हो जाय तो उससे चिपके रहने के लिए व्यग्र-व्यथित रहना तृष्णा की गुलामी है।

विवाह-शादी के अवसर पर नवदम्पति के लिए बड़े-बुजुर्गों, बंधु-बांधवों, मित्र-स्नेहियों की मंगल-कामना अपेक्षित है। परन्तु ऐसे अवसर पर वैभव-प्रदर्शन की होड़, तृष्णा की गुलामी है।

इसी मापदण्ड से अपने जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता-पूर्ति को तृष्णा की गुलामी से अलग करके देखते समझते रहें। दोनों एक नहीं हैं, जुदा जुदा हैं। तृष्णा की गुलामी को नैसर्गिक आवश्यकताओं का झूठा जामा पहनाना अपने आप को धोखा देना है। रूप, शब्द रस, गंध, स्पर्श और मनोविकल्प रूपी ऐन्द्रिय विषयों के उपभोग के लिए पागलों की तरह दौड़ना नैसर्गिक आवश्यकता की पूर्ति कदापि नहीं है।

०००००००

प्रत्येक तृष्णा के उत्पन्न होने पर मन और तन पर एक विशिष्ट प्रकार का अत्यंत सूक्ष्म स्पन्दन होने लगता है, जिसकी संवेदना चेतन मन को भले न हो, परन्तु अवचेतन मन को होती रहती है। जब तक अभीष्ट की प्राप्ति न हो जाय तब तक यह स्पन्दन-संवेदन चलता ही रहता है। जब जब अभीष्ट के प्रति आतुरता-अधीरता बढ़ती है, तब तब यह स्पन्दन भी अधिक तीव्र हो उठता है। तृष्णा के साथ साथ जन्म लेने और जीवित रहने वाला यह स्पन्दन अप्रिय होता है, क्योंकि स्नायु-तंतुओं पर तनाव पैदा करता है, गाठें बांधता है। परन्तु इस तनाव और इन ग्रंथिओं के बावजूद भी अप्रिय संवेदना में एक प्रकार की सम्मोहन शक्ति होती है जिससे कि अचेतन धीरे धीरे इसमें डूबे रहने का आदी हो जाता है। यह एक अटूट व्यसन की तरह मन से चिपक जाता है। कभी कभी यह तनाव बहुत ही तीव्र हो उठता है तो हम अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और विक्षिप्त हो जाते हैं। परन्तु ऐसा न हो तो भी निरन्तर बने रहने वाले इस तनाव का बुरा असर हमें बेचैन तो बनाए ही रखता है। तृष्णा का यह जहर हमें मर्मान्तक पीड़ा पहुंचाते रहता है। परन्तु फिर भी मीठा होता है; मादक होता है, इसलिए तनाव और कसाव से परिपूर्ण होते हुए भी कुटेव की तरह हमारा पीछा नहीं छोड़ता।

जब कभी किसी कामना की पूर्ति हो जाती है तो यह विशेष प्रकार का स्पन्दन-संवेदन थोड़ी देर के लिए रुक जाता है। उस समय हमारे अन्तर्मन पर एक अन्य प्रकार के स्फुरण-सिहरन की संवेदना होने लगती है, जो कि हमें सुखद लगती है, प्रिय लगती है, रोचक लगती है। परन्तु यह दीर्घजीवी नहीं होती। उत्पन्न होने के थोड़े समय पश्चात ही यह बासी पड़ने लगती है। इसका आकर्षण मंद पड़ने लगता है। इसके द्वारा प्रतीत होने वाले सुख-संतोष विलीन होने लगते हैं। और धीरे धीरे इस स्फुर्ण का संवेदन पूर्णतया रुक जाता है और तब कामना-तृष्णा वाला पूर्ववर्ती स्पन्दन-संवेदन पुनः जाग पड़ता है। क्योंकि यह संवेदन तो एक व्यसन की तरह पीछे लग ही चुका होता है। इसे निरन्तर चालू रखने के लिए अन्तर्मन अपने लिए कोई न कोई नया अभीष्ट खोज लेता है। नया आलंबन प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार यह फोड़ा रिसता ही रहता है, चूता ही रहता है। यह आग सुलगती ही रहती है धधकती ही रहती है। किसी न किसी रूप में हम इस नासूर के प्रति नित्य नया स्राव पैदा करते ही रहते हैं। इस आग के लिए नित्य नया जलावन पैदा करते ही रहते हैं। कभी रूप का, कभी रस का, कभी गंध का, कभी शब्द का, कभी स्पर्श का, कभी मनोविकल्प का। यही तृष्णा के प्रति आसक्ति है। तृष्णा के सहजात उस सूक्ष्म स्पन्दन के प्रति आसक्ति है जो कि हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

इस प्रकार कामना और तृष्णा के घोड़े सरपट दौड़ते ही रहते हैं। किसी एक अभीष्ट की सिद्धि पर जो अल्पकालीन सुखद स्फुर्णा हुई थी, उसकी याद में इन घोड़ों की गति और तेज होती रहती है।

कामना-पूर्ति में जहां कोई अड़चन पैदा होती है, वहीं द्वेष-शोक जाग उठते हैं। अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी, इस आशंका की पीड़ा जाग उठती है। अभीष्ट सिद्धि हो जाने पर वह कहीं छूट तो नहीं जायेगी, इस भय की चिंता जाग उठती है। दुख, शोक, आशंका, भय ये सारे के सारे विकार तृष्णा की ही उपज हैं। इन दर्दनाक मनोविकारों से मुक्ति पाने के लिए तृष्णा-कामना से विमुक्त होना अनिवार्य है, अपरिहार्य है!

भगवान ने कितना ठीक कहा :-

तण्हाय जायते सोको, तण्हाय जायते भयं ।।
तण्हाय विप्पमुतस्स, नत्थि सोको, कुतो भयं ?

तृष्णा से ही शोक उत्पन्न होता है। तृष्णा से ही भय उत्पन्न होता है। तृष्णा से मुक्त हो जाय तो शोक ही न रहे, फिर भय कहां रहे ?

और तृष्णा से विमुक्त होने का सहज, सरल तरीका है--विपश्यना भावना। अपने चित्त में समाई हुई तृष्णा को, कामना को न दबाएँ, न उपेक्षित करें, बल्कि साक्षीभाव से देखें। कामना-तृप्ति पर प्राप्त हुए क्षणिक सुख से पागल न हो जायँ, बल्कि उसे साक्षीभाव से देखें। अतृप्ति के कारण भविष्य के प्रति जो आशंका और भय उत्पन्न होते हैं, उनसे आकुल-व्याकुल और भयभीत न हो जायँ, बल्कि उन्हें साक्षीभाव से देखें। इसी प्रकार इन मनोविकारों से उत्पन्न होने वाले स्पन्दन, सिहरन, थिरकन, फुरकन. स्फुरन, कम्पन, धूजन, जलन, उत्पीड़न आदि आदि विभिन्न संवेदनाओं से प्रभावित हुए बिना, इन्हें साक्षीभाव से देखें। इन्हें अचेतन से चेतन मन तक लाकर साक्षीभाव से देखते ही इनका रेचन हो जाता है, उन्मूलन हो जाता है। इनकी जकड़ ढीली पड़ जाती है। इनके क्षण क्षण

परिवर्तित अनित्य स्वाभाव को प्रज्ञा-दृष्टि द्वारा देख लेना ही साक्षीभाव से देखना है, यथाभूत देखना है। यही विपश्यना भावना है, विदर्शना मावना है। यही स्थितप्रज्ञता और अनासक्ति का सहज सरल क्रियात्मक अभ्यास है तृष्णा की गुलामी से नितांत विमुक्ति पाने का यही कल्याणपथ है, यही मंगल-मार्ग है।

मंगल मित्र,

स. ना. गो.

साधकों के उद्गार

जयपुर के श्री कन्हैयालाल लोढ़ा लिखते हैं, "आप अनित्य, अनात्म, दुःखरूप भावनामय प्रज्ञा में स्थित होकर स्वस्थ (निर्विकार) तथा प्रसन्न (निराकुल) होंगे। आपके द्वारा संसार में महत्कार्य होना है जिसका दायित्व आप पर है। शिक्षक व सूत्र-साहित्य तैयार करना है। समय बड़ी त्वरित गति से व्यतीत हो रहा है। जरा रोग आदि देह के लिए घात लगाए हुए हैं। इन सब बातों से आप परिचित ही हैं। धर्म का महत्व सर्वोपरि है-- इसके समक्ष परिवार-व्यापार आदि कार्योंका कुछ भी महत्व नहीं है। आपकी देह विश्वकी निधि है। आपके जीवनके एक एक क्षण का मूल्य है, उसका उपयोग परिवार तक ही सीमित न होकर विश्वहित में हो ऐसी समय की मांग है, धर्मचक्र प्रवर्तन की आवश्यकता है। अमूल्य रत्नों का उपयोग कांच या पत्थर के स्थान में हो तो हृदय को दर्द होता है। न काल का भरोसा है और न कल का। भगवान महावीर, बुद्ध भी शतायु न हो पाए और आप पर धर्मचक्र-प्रवर्तन का ऐसा दायित्व है जिसे आप के अतिरिक्त दूसरा कोई भी पूरा कर सकने में समर्थ व योग्य नहीं दिखाई देता। आप स्वयं इन सब तथ्यों के परिज्ञाता हैं फिरभी आपका मेरे पर अनंत उपकार है। अतः मेरे हृदय में वेदना उठी, उसे आपके समक्ष स्मरण दिलाने हेतु प्रस्तुत की है। आशा है आप मुझे बालक समझकर क्षमा करेंगे। संसार के कार्य संपूर्ण विश्व की संपत्ति पाने पर भी किसी के भी न कभी पूरे हुए हैं और न पूरे होंगे ही। कारण कि प्राप्त होता प्रतीत ही होता है, प्राप्त होता नहीं। इसी की स्मृति दिलाने हेतु मेरे से ऐसा लिखा गया है। मैंने आपसे सुनी हुई बात ही आपके समक्ष प्रस्तुत की है, निवेदन की है, भेंट की है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। आप स्वयं सुज्ञ व विवेकवान हैं, जो उचित व उपयुक्त होगा वही कर रहे होंगे। मैंने तो हृदयकी वेदना व भावना ही व्यक्त की है।

आपने मुझे बुद्धि-विलास से छुड़ाने का महान उपकार किया है। धर्म के सत्य पथ पर, निसर्ग पथ पर चलने का मार्गदर्शन व विधि का मार्गदर्शन व विधि का अभ्यास कराया है; उसका आभार-दर्शन शब्दातीत है।

मैं प्रतिदिन प्रातः एक घंटा विपश्यना करता हूँ, सायं आध-पौन घंटा। अभी भी अनित्यता, वियोग, व्याकुलता (दुःख) जनित वेदना तीव्र नहीं हुई। अधिकांश समय विनाशी के चिंतन, चर्चा व भोग में ही जाता है। तन, मन, धन आदि विनाशी पदार्थों के सुख-भोग व संग त्यागने का साहस व उत्साह नहीं होता है। प्रमाद व मूर्छा छा रही है। जड़ता का पूरा जोर है जिसका निवारण अंतर्निरीक्षण किए बिना, भवंग (हृदय) पर ध्यान लगाए बिना संभव नहीं लगता। अतः कुछ काल आपके सान्निध्य में ध्यान-साधना करूं, ऐसी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। ....

एक-दो मास लगातार साधना किए बिना भवंग में स्थित पूर्व संचित कर्म, विकार, जड़ता, आवरण दूर होना कठिन ही लगता है। इगतपुरी की एक मास की साधनाके लाभों का अनुभव व महत्व अब प्रकट हो रहा है। आज भी राग आग के समान संताप-ताप देने वाला नहीं लग रहा है। अन्तःकरण व अनुभूति के स्तर पर अब भी राग का विष मधुर, मस्ती देनेवाला, मूर्छा का प्रिय सुख देने वाला लग रहा है। राग के प्रवाह से कैसे पार होंऊँ? मार्गदर्शन करने की कृपा करें।

जब कभी समय हो तो अपने इस अबोध बालक को पत्र से प्रेरणा देकर सजग बनाते रहने की कृपा करें।".....

जोधपुरमें सामूहिक साधना

हर **रविवार को प्रातः ६ से ७ बजे** तक निम्न पते पर सामूहिक साधना हुआ करती है जिसमें सभी स्थानीय साधक सम्मिलित होते हैं। यदि कोई बाहरी साधक भी जोधपुर आए तो इस अवसरका लाभ उठा सकता है।

पता : **श्री छगनराज जैन** फोन नं. : २११३६

६३७-बी, रेजीडेंसी रोड, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,

शास्त्री नगरके सामने, जोधपुर (राजस्थान).

सूचना

दिसम्बर १९८१ से मध्य फरवरी १९८२ तक की अवधिके बीच एक महीने अथवा उससे अधिक समय तक रहनेवाले चुने हुए पुराने साधकोंके बोधार्थ गुरुदेव गोयन्काजी भगवान बुद्धके विपश्यना संबंधी दिए गए प्रसिद्ध उपदेश "महासति पट्ठान सुत्त" की व्याख्या करेंगे।

फरवरीके तीसरे सप्ताहमें गुरुदेव एवं माताजी बोधगया, सारनाथ श्रावस्ती, कुशीनगर एवं लुबिनी पुण्य स्थानोंकी यात्रा करेंगे जहाँ कि एक-एक, दो-दो दिनके लिए साधनाका कार्यक्रम होगा। थोड़ेसे चुने हुए पुराने साधक इस धर्मयात्रामें सम्मिलित हो सकेंगे।

इगतपुरी में स्वयं शिविर

स्व. शि. क्र.	९२	दि. २२-१०-८१	से	१-११-८१	तक
,,	९३	,, ८-११-८१	से	१९-११-८१	तक
,,	९४	,, १९-११-८१	से	३०-११-८१	तक

संपर्क - व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि,
इगतपुरी-४२२ ४०३ (नासिक) फोन नं. - ७६

भावी कार्यक्रम

लघु शिविर — ※ इगतपुरी (केवल पुराने साधकों के लिए) दि. १–११–८१ से ८–११–८१ तक
शिविर क्रमांक २०३ जयपुर (विपश्यना केन्द्र, धम्मथली, गल्ताजी रोड,) दि. २१–११–८१ से २–१२–८१ तक (हिन्दी)
संपर्क – श्री श्यामसुन्दर मूंदडा, जी–१/ए, अशोक मार्ग, सी–स्कीम, जयपुर–३०२ ००१, फोन नं. ६३३२२–६३३६६ तार–डॉली
शिविर क्रमांक २०४ * इगतपुरी दि. ५–१२–८१ से १६–१२–८१ तक (हिन्दी)
,, ,, २०५ ,, दि. २३–१२–८१ से ३–१–८२ ,, (अंग्रेजी)
आचार्य-स्वयं-शिविर ,, दि. ५– १–८२ से २०–१–८२ तक (प्रतिबंधित)
(विशेष – इस स्वयं शिविरके दौरान विद्यापीठ पूरी तरह बंद रहेगी और कोई भी व्यक्ति आचार्यसे नहीं मिल सकेगा)
शिविर क्रमांक २०६ * इगतपुरी दि. २०–१–८२ से ३१– १–८२ तक (हिन्दी)
,, ,, २०७ ,, ,, ३– २–८२ से १४– २–८२ तक (अंग्रेजी)

※ संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३ (नासिक) फोन नं. इगतपुरी–७६

सूचना : १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर–व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके। २) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी–प्रवचन सुनने लिए हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहती है। ३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

ग्राम–बिसाउका फोन : २५५०८२ / ५७६०३८
मेसर्स बसंतलाल जटिया अण्ड कं.,
लालमणि, ३रा माला, रुम नं. १३, २५/३१, डॉ. आत्माराम मर्चेंट रोड, भुलेश्वर, बम्बई–२.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

तृष्णा रस मीठो जहर, पीवत लाग्यो स्वाद।
गट गट गट गट पी गयो, पाछै बाढ़ी ब्याद॥
बिसय–रसां पर रीझ कर, परबस हुयो गुलाम।
चैन न दिन ना रात है, चैन सुबह ना साम॥
राग द्वेस अर मोह रा, चित्त चढ़ाया मैल।
सुद्धी करनी भूलग्या, दुक्ख लगाया गैल॥
तृष्णा मन मथती र वै, ब्याकुल जिवड़ो होय।
जो चावै सुख–सांति तो, अपणै भीतर जोय॥
तृष्णा जड़ सूं खनन रो, यो ही एक उपाव।
निरविकार निरखत रवो, काया चित्त सुभाव॥
राग द्वेस अर मोह री, छांट न हियड़ै होय।
ब्रह्म जिसो निरमल बणै, ब्राह्मण होवै सोय॥

ग्राम–प्रेमकेबल फोन : ४०३५७/४४५४७
मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं. लि.,
१४ / १५ F, कनॉट सर्कस,
नई दिल्ली–११० ००१.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दोहे धर्म के

दुःख दुःख तो सब कहें, पर जाने ना कोय।
तृष्णा ही तो दुःख है, छुटे दुःख ना होय॥
तृष्णा से दुख जागते, तृष्णा से भय होय।
तृष्णा त्यागे दुख मिटे, भय काहे से होय॥
तृष्णा कृष्णा सर्पिणी, इससे रह हुशियार।
सावधान रह, सजग रह, करे न नागन वार॥
राग, द्वेष का, मोह का, अंधकार भरपूर।
विपश्यना के तेज से, होंय सभी काफूर॥
तृष्णा जड़से खोदकर, अनासक्त बन जांय।
भवसागर से तरन का, यह ही एक उपाय॥
नहीं राग, ना द्वेष है, नहीं मोह लवलेश।
वे मानव अरहंत हुए, दूर हुए सब क्लेश॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाउस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई–२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१.
पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/–, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/– ● वार्षिक शुल्क रु. ५/–, आजीवन शुल्क रु. ५१/–

विपश्यना"

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)